बच्चे और भोलानाथ को लेकर मैं विंध्याचल के देव मंदिरों का दर्शन करने के लिए चल पड़ी । हमलोग पहाड़ी सीढ़ी से ऊपर चढ़ रहे थे। सीढ़ी संकरी थी । मैं सबसे आगे–आगे चल रही थी । मेरे पीछे भोलानाथ और उनके पीछे कुञ्ज बाबू की पत्नी तथा बच्चे थे । मैं अनमने भाव से सीढ़ियों–पर चढ़ रही थी । कहाँ पैर पड़ रहे हैं, इस पर गौर नहीं कर रही थी । पहाड़ पर मेरी हालत ऐसी हो जाती है । इसी प्रकार चलते–चलते मेरा पैर एक साँप पर पड़ गया । ठंढा लगने के कारण तुरंत पैर हटाकर दूसरी सीढ़ी पर पैर रखा। पैर हटाने के साथ ही साँप ने मेरे पैर को काट खाया और जहाँ था, वहीं से फन फैलाकर मेरी ओर देखने लगा । मैं भी उसे एक टक देखने लगी । इधर लोग ''साँप–साँप'' कहकर चीखने लगे । सभी की दृष्टि साँप पर पड़ी । भोलानाथ मेरे और साँप के पीछे थे । उन्होंने व्यस्तभाव से पूछा कि मुझे साँप ने काटा तो नहीं और इसे मार दिया जाय या नहीं । मैंने कहा–'नहीं मारने की जरूरत नहीं ।' भोलानाथ ने जब यह प्रश्न किया कि साँप को मार दिया जाय या नहीं तब साँप ने एक बार पलटकर उनकी ओर देखा था । ठीक इसी समय कुञ्ज बाबू के छोटे पुत्र ने अपनी माँ से कहा–'माँ, दादा को जो साँप काटने की बात थी, उसे माँ ने ले लिया ।' इतना छोटा बालक अचानक ऐसी बात कैसे कह बैठा, कौन जानता है ?

''इसके बाद विभिन्न स्थानों का चक्कर काटने के बाद हमलोग डेरे पर वापस आ गये । इस दिन हम लोगों के यहाँ सभी के खाने के लिए खिचड़ी बनी थी । मैं सारी खिचड़ी अकेली खा गयी । पुनः नये सिरे से खिचड़ी बनाकर सभी को खिलाया गया । तीसरे पहर ख्याल के कारण कुञ्ज बाबू के बच्चों के साथ दौड़ती हुई पहाड़ के नीचे आ गयी । वहाँ विश्राम करते समय दाहिने पैर के अंगूठे के नीचे सूई की छेद की तरह चोट के निशान देखा जहाँ नीला हो गया था । साँप गेहुँअन था । काटने के कुछ देर बाद जहर का असर

भी हुआ था । शाम के समय जब डेरे पर वापस आयी तब कुज्ज बाबू के लड़के से मैंने कहा–'मुझे काटा साँप ने और मैंने खाया भात।'

इस घटना के कुछ दिनों बाद हम शाहबाग वापस लौट आये। एक दिन बाउल बाबू आदि के निकट उक्त साँप की कहानी कहती हुई बोलीं कि साँप चला गया, इसलिए मैं रोने लगी । फिर अपने को यह कहकर सान्त्वना देने लगीं कि उसके साथ पुनः मुलाकात होगी।

"इस घटना के कुछ दिनों बाद हम लोग विद्याकूट में गये । वहाँ कुछ दिनों तक रहने के बाद जिस डेरा से नाव द्वारा स्टेशन रवाना हो रही थीं, ठीक उसी दिन चलते समय मुझे रोना आ गया। जो लोग मेरे पड़ोसी थे, उनके गले से लिपटकर मैं रोने लगी । लड़कियाँ बाप के घर से ससुराल जाते समय जिस प्रकार रोने लगती हैं, ठीक उसी तरह । क्यों बेकार रो रही हूँ, मैं स्वयं समझ नहीं पाई । यह रोना पिता–माता के लिए तो नहीं था, क्यों पिता–माता तो मेरे साथ ही थे । जो लोग मुझे देखने आये थे, वे भी मेरा रोना देखकर रोने लगे । इसके बाद हमलोग नाव पर आकर बैठे । मेरे साथ माँ, पिताजी, शशांक बाबू, खुकुनी, खुकुनी के दादा[1] थे । हम लोग जब नाव द्वारा एक सँकरे मार्ग से गुजरने लगे तब हम लोगों ने देखा कि एक साँप फन उठाये हमारी नाव की ओर आ रहा है । आश्चर्य की बात यह रही कि उक्त साँप नाव से दस–बारह हाथ दूरी का व्यवधान रखते हुए आ रहा था । न कम और न अधिक । मैं अपलक दृष्टि से उसकी ओर देखती रही । दूसरी ओर आँखें नहीं घूमा पा रही थी। मेरे एक ओर खुकुनी और दूसरी ओर खुकुनी के दादा बैठे थे । अब तक साँप हमारे साथ चला आ रहा है, इस दृश्य को किसी ने नहीं देखा । अन्त में साँप ने जब नाव के करीब आकर मेरे मुँह

१. श्रीयुक्त वीरेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय । आप आगरा कालेज के अध्यापक हैं। यह कहानी उन्होंने सुनायी थी ।

के सामने फन उठाया तब माँझी ने डाँढ़ से साँप को मारा । डाँढ़ से साँप को आघात नहीं लगा । वह चल गया, पर डाँढ़ से उछलकर इतना पानी ऊपर छलका कि मैं भींग गई । लोगों ने कहा कि कपड़े बदल लीजिए मैंने कहा–''नहीं, यह पानी शरीर में सुखाना ठीक है ।'' जब लोगों ने परेशान करना शुरू किया कि यह साँप कौन था, बताइए। तब मैंने कहा–विन्ध्याचल का साँप है । वास्तव में ये एक महापुरुष हैं । साथ में शिष्य को लेकर आये हैं ।''

इसी समय मैंने कहा–'माँ तुमने तो एक साँप की चर्चा की । इसमें शिष्य कहाँ से आ गया ?' माँ ने कहा–'उक्त महापुरुष के पीछे एक शिष्य को देखा था । महापुरुष कभी शिष्य को छोड़कर नहीं आते। वे लोग जन्म लेने के साथ ही शिष्य को लेकर आते हैं । हाँ, तुम्हें इस बात का संदेह हो सकता है कि विंध्याचल का साँप विद्याकूट में कैसे आ गया ?' मैंने कहा–'नहीं, इस विषय पर मुझे संदेह नहीं है । लेकिन वह साँप अगर महापुरुष था तो तुम्हें उसने काटा क्यों ?' माँ ने जवाब दिया–'काटा कहाँ था ? तुम लोग बच्चों का हाथ–पैर पकड़कर प्यार नहीं करते ? यह भी वही रूप था । मैं दुलारी बेटी हूँ न, इसलिए पिताजी ने पैर पकड़ कर दुलार किया था । उसी समय से पिताजी मेरे साथ हैं ।' मैंने कहा–माँ जिस समाधि[1] के ऊपर तुमने शिवमन्दिर की स्थापना की है, वह इस महापुरुष की समाधि तो नहीं ? अगर यह बात न होती तो तुम मन्दिर के शिखर पर एक साँप बनवाने को क्यों कहतीं ?'' यह बात सुनकर माँ खिलखिलाकर हँस पड़ी और बोलीं–'मैं इतनी बातें नहीं बता सकती ।'

१. रमना के आश्रम में अन्नपूर्णा मन्दिर के पीछे एक पक्की जमीन है । पहले–पहल जब आश्रम में गया था तब उसी हालत में मैंने उसे देखा था । कुछ भक्तों से प्रश्न करने के बाद पता चला कि वह एक महापुरुष की समाधि है, इसलिए पक्का बनाया गया है । आगे चलकर माँ ने उसके ऊपर शिव मन्दिर की स्थापना कर मन्दिर के चारों ओर शिखर पर एक साँप बनाने का आदेश दिया था ।

आगे माँ ने कहा–"एक दिन निरंजन बाबू[1] के यहाँ कीर्तन हो रहा था । मैं दोतल्ले के एक कमरे में थी । वे लोग मुझे कीर्तन में ले जाने के लिये बुलाने आये । लेकिन उस समय मुझमें एक भाव आ गया था जिसके कारण उठकर जा नहीं सकी । कुछ देर बाद साँप–साँप की आवाज आयी । इस शोरगुल को सुनकर मैं नीचे जाने के लिए तैयार हो गयी । लोग उस समय इस कमरे में तो कहीं उस कमरे में साँप खोज रहे थे । मैं झूमती हुई सीढ़ी के नीचे उतर रही थी । ठीक इसी समय साँप के ऊपर मेरे पैर पड़ गये । साँप भागने के लिए मेरे पैर के नीचे छटपटा रहा था । भोलानाथ मेरे पीछे थे। भोलानाथ को हटाकर मैंने साँप पर से पैर हटा लिया । साँप सीढ़ी के नीचे जाकर लम्बे रूप में सो गया । देखने में पतला और घोर काला था । उसे मारने के लिए लोग मुझसे अनुमति माँगने लगे । मैंने कहा–अगर हिम्मत हो तो मारो ।' लोग लाठी लेकर मारने आये, पर इसी बीच वह न जाने कहाँ गायब हो गया । फिर कुछ पता नहीं चला । चारों ओर प्रकाश है, घर में इतने लोग हैं । कैसे सबकी नजर बचाकर वह अदृश्य हो गया, लोग समझ नहीं पाये ।"

एक दिन माँ से मैंने पूछा–'माँ, रमना में जहाँ तुमने आश्रम बनवाया है, सुना कि तुम अक्सर वहाँ साँपों को दूध–केला खिलाया करती थीं ?'

माँ ने कहा–'दूध–केला साँपों को आज दिया जाता है ।' आश्रम की स्थापना के पूर्व यहाँ जंगल था । जहाँ सियार, साँप आदि जंतु रहते थे । यहाँ एक टूटा देवालय भी था । जानते ही हो कि मैं स्वयं कुछ नहीं करती । एक दिन अचानक ख्याल हुआ कि दूध–केला दे आऊँ । रात को आकर दूध–केला रख गई । सात दिन बाद अचानक

१. आप ज्योतिष बाबू के मित्र थे । नाम निरंजन राय । आप इनकम टैक्स विभाग के कमिश्नर थे । दोनों ही माँ के भक्त रहे ।

पुनः एक रात को ख्याल हुआ कि देख आऊँ आखिर दूध–केला का क्या हुआ । भोलानाथ और कुछ लोगों को लालटेन सहित लेकर आई । आकर देखा कि जिस जगह दूध–केला रख गई थी, वह वहीं उसी हालत में रखा है । जंगल के जीवों ने उसे स्पर्श तक नहीं किया था । यहाँ तक कि उस पर कूड़ा–करकट का एक टुकड़ा भी नहीं गिरा है । दूध की हालत देखकर ऐसा लगा जैसे अबतक किसी ढक्कन के नीचे रखा था । अभी–अभी ढक्कन खोलकर देख रहे हैं । इस दूध को देखकर मैं बोल उठी–'आओ, हम लोग प्रसाद ग्रहण करें ।' लेकिन साथ आये लोगों ने आपत्ति की । उन लोगों ने कहा–'इस दूध को नहीं पीना चाहिए । मुमकिन है जहर हो । ऐसी हालत में जो खायेगा, मरेगा ।' मैंने कहा–'मैं पहले पीऊँगी । इतना कहकर हाथ से थोड़ा दूध उठाकर पी गई । इसके बाद सभी लोगों ने पान किया । बाकी दूध छोड़ दिया । दूसरे दिन आकर देखा कि छोड़ा गया दूध पता नहीं कौन पी गया है । मुझे लगा जैसे इतने दिनों तक वे सब मेरी प्रतीक्षा कर रहे थे । बाद में उक्त स्थान का बन्दोबस्त लेकर वहाँ आश्रम बनाया गया ।'

इस स्थान की प्रशंसा माँ कई बार कर चुकी हैं । एक दिन कहती रहीं–''यहाँ इतने यज्ञादि हो चुके हैं कि यहाँ कुछ भी अपवित्र नहीं है । यहाँ का प्रत्येक कण पवित्र है ।''

एक दिन और कहती रहीं–''इस स्थान पर पहले जितने महापुरुष साधना कर गये हैं, उनकी इच्छा से ही यहाँ आश्रम की स्थापना हुई है ।'' भक्तों को माँ हमेशा आश्रम में आकर नाम जपने का उपदेश देती हैं ।

जिन दिनों माँ शाहबाग और सिद्धेश्वरी आश्रम में रहती थीं, उन दिनों अनेक लोग माँ की अलौकिक शक्ति प्रत्यक्ष रूप में देख चुके हैं । लेकिन मैंने जिस समय से आना–जाना प्रारम्भ किया,

उस समय माँ अपनी समस्त विभूतियों को संवरण कर स्थिर, धीर, प्रशान्त सागर की तरह रहती थीं । मुझे माँ की कोई विभूति दर्शन करने का अवसर नहीं मिला । इसके पूर्व माँ के श्रीमुख से, भावावेश के समय अनेक संस्कृत के स्तोत्र निकलते काफी लोग सुन चुके हैं । माँ हँसते–हँसते उन स्तोत्रों की बातें मुझे बताती रहीं ।

माँ कहती रहीं–'यह आश्चर्य की बात है कि जो शब्द जिस रूप में उच्चारण होना चाहिए जीभ अपने आप ठीक जगह पर वही शब्द उसी रूप में उच्चारण करती रही ।'

यह सब सुनकर एक दिन मैंने माँ से कहा–'माँ, तुम्हारे मुख से संस्कृत शब्द सुनने की बड़ी इच्छा है ।' माँ ने कहा–'मैं अपनी इच्छानुसार स्तोत्र वगैरह कह नहीं पाती । कभी–कभी अपने आप मुँह से निकल जाता है । इस पर मेरा कोई हाथ नहीं है ।'

एक दिन माँ से पूछा–'माँ, सुना है कि आपने अपने किसी भक्त को दस महाविद्या रूप दिखाया था ?'

माँ हँसकर बोलीं–''मैंने कुछ भी नहीं दिखाया । वे लोग कहते हैं कि उन लोगों ने ऐसा देखा है ।''

स्पर्श के द्वारा रोग अच्छा करने के प्रश्न पर माँ ने इसी प्रकार का जवाब दिया था । उन्होंने कहा था–'यह सब कुछ भी मेरी इच्छा से नहीं होता ।' सब कुछ भगवान की इच्छा से होता है । ऐसा भी देखा गया है कि रोगी जब मेरे पास आया और मेरे हाथ ने अपने आप उसे स्पर्श किया, बस उसका रोग दूर हो जाता है । दूसरी ओर कुछ रोगी ऐसे भी आये जिनके शरीर पर हाथ फेरने की इच्छा नहीं होती । शाहबाग में रहते समय एक बार एक रोगी को मेरे पास लाया गया और उसे स्वस्थ करने के लिए मुझसे अनुरोध किया गया । मैंने कहा–'मेरे पास ऐसी कोई शक्ति नहीं है जिसके माध्यम से रोग दूर कर सकूँ । तुम लोग डाक्टर कविराज के पास जाओ ।' लेकिन भोलानाथ

बार–बार कहने लगे–'इसे तुम स्वस्थ कर दो ।' 'वर्ना मैं तुम्हें छोड़ूँगा नहीं ।' इतना कहने के बाद उन्होंने शाहबाग में रोगी के ठहरने की व्यवस्था की । उस समय मैं कुछ नहीं बोली । तीसरे पहर कीर्तन प्रारम्भ हुआ । मैं भावावेश में आकर बोल उठी–'रोगी को जाकर कह दो कि वह कीर्तन में आकर लोटपोट करे ।' रोगी कीर्तन स्थल पर आया, पर काफी कोशिश करने पर भी वह लोटपोट नहीं लगा सका। जबकि इतना कमजोर नहीं था कि वह इतना न कर सकता हो। आश्चर्य की बात यह हुई कि उसके साथियों में से कोई भी उसे जमीन पर जबर्दस्ती लिटा नहीं सका। बाद में सुना कि वह रोगी घर पहुँचने के पहले ही मार्ग में मर गया। इसीलिए कहती हूँ कि बिना ईश्वर की इच्छा के कुछ होता नहीं ।'

उस दिन शायद शिव चतुर्दशी थी । मैं आश्रम में सबेरे के समय पहुँच गया था । देखा कि वहाँ कुछ भक्त लोग आकर नाम कीर्तन कर रहे हैं । कुछ देर कीर्तन होने के बाद माँ के साथ बातें होने लगीं ।

मैंने माँ से पूछा–'माँ, लोगों का मुँह देखकर उसका स्वभाव और उसके मन का भाव बता सकती हो या नहीं ?'

माँ ने हँसकर जवाब दिया–"मैं यह सब नहीं बता पाती ।"

यह जवाब मेरे मन के लायक नहीं था । मैंने पुनः प्रश्न किया–"माँ, मैंने सुना है कि योगी लोग मुँह देखकर, यहाँ तक कि व्यक्ति द्वारा प्रयोग किये सामानों को देख या स्पर्श कर, उसका चेहरा, स्वभाव और वह कहाँ है, किस स्थिति में है, सब कुछ बता देते थे ।"

माँ ने कहा–यह मैं भी कह सकती हूँ, पर यह समझो कि अगर इतने व्यक्तियों के सामने तुम्हारे स्वभाव के बारे में कहना प्रारम्भ करूँ तो शर्म से तुम गड़ जाओगे ।

मैंने हँसते हुए कहा–"मैं तो तुम्हें मेरे स्वभाव के बारे में बताने को नहीं कह रहा हूँ । तुम यह सब बता सकती हो या नहीं, यह जानना चाहता हूँ । लेकिन तुमने पहले अस्वीकार क्यों किया ?" माँ मुस्कराने लगीं । मेरे प्रश्न का उत्तर नहीं मिला ।

इसी दिन एक उल्लेखनीय घटना हुई जिसमें माँ की अलौकिक शक्ति प्रकट हुई । उस समय दिन के ११ या ११–३० बजे होंगे। बड़ी कड़ी धूप थी । ठीक उसी समय कुछ महिलाएँ आश्रम में आयीं। शिव चतुर्दशी होने के कारण वे सब प्रत्येक मन्दिर के विग्रहों का दर्शन कर रही थीं। सभी देवताओं का दर्शन करने के पश्चात् वे लोग माँ के पास आयीं। लगभग १५–२० महिलाएँ थीं ।

अचानक एक महिला की ओर देखती हुई माँ हँसती हुई बोल उठीं–"तुम्हारे कान की बाली बहुत सुन्दर है । आजकल ऐसी बाली लोग पहनते हैं ?" माँ बार–बार इसी बात को दुहराती रहीं । माँ ने जिस महिला को लक्ष्य करके यह बात कही, मैंने अबतक उसकी ओर देखा तक नहीं और न देखने की इच्छा हुई थी । मैं सिर्फ माँ के हास्योज्ज्वल मुख की ओर देखता रहा और उनकी कौतुक भरी दृष्टि पर मेरी नजर थी । माँ के हावभाव देखने पर ऐसा लगता था जैसे वे एक अबोध बालिका हैं । अत्यन्त मामूली बात पर आनन्दित हैं ।

ठीक इसी समय माँ उक्त महिला को लक्ष्य करती हुई बोलीं– "तुम्हारी दोनों आँखें बहुत सुन्दर हैं । तुम्हारी बाली की सुन्दरता देखकर ही आँखें देख सकीं ।"

यह बात सुनकर मुझे आश्चर्य हुआ । तब मैंने उक्त महिला की ओर देखा । देखते ही मुझे अपार विस्मय हुआ । उक्त महिला की उम्र ३०–३५ के लगभग थी । शरीर का रंग घोर कृष्णावर्ण था। चेहरा बहुत ही खराब । दोनों आँखें लाल और अस्वाभाविक रूप से बड़ी थीं। विभीषिका दर्शन करने पर जिस तरह लोग भयातुर दृष्टि

से देखते हैं, ठीक उसी तरह की थीं । वह महिला माँ की ओर देखते–देखते गों–गों आवाज करती हुई गिर पड़ी ।

यह देखकर मैं डर गया । इस वक्त क्या करना चाहिए, नहीं समझ पा रहा था । सभी के चेहरों पर उद्वेग दिखाई देने लगे । जब माँ की ओर देखा तो उन्हें हँसते–हँसते लोटपोट होते देखा । यह दृश्य देखकर मैं हत्बुद्धि सा हो गया । इस परिस्थिति में माँ क्यों हँस रही हैं, समझ नहीं पाया । मुझे लगा कि इस महिला को इस हालत के लिए माँ जिम्मेदार हैं । यह महिला जिस ढंग से माँ की ओर देख रही थी, उससे ऐसा अनुभव हुआ कि उसने माँ के भीतर कुछ ऐसा देखा जिसके कारण बेहोश हो गयी । माँ जब ऐसी स्थिति में हँस रही हैं तब डर की कोई बात नहीं है । माँ ऐसी निष्ठुर नहीं हैं कि इस महिला के प्राण संकट की स्थिति उत्पन्न हो और ऐसी खतरनाक हालत में वे हँसती रहें । इधर उक्त महिला के साथ आयीं अन्य महिलाएँ इस परिस्थिति को देखकर परेशान हो गयीं ।

अचानक माँ हँसना बन्द करके बोलीं–"यह जब बेहोश हो गयी है तब तुम सब इसे आश्रम में रखकर चली जाओ । बाद में स्वस्थ होने पर चली जायगी ।"

माँ की बातें उन लोगों को पसन्द नहीं आयीं । उनके हावभाव से समझा कि इस घटना के लिए वे माँ को जिम्मेदार समझ रही हैं और उनके चेहरे पर विरक्ति की भावना उमड़ चुकी है । उनमें से एक बोलीं–"यह अक्सर बीच–बीच में इस तरह बेहोश हो जाती है।"

माँ ने कहा–"ठीक है । अगर इसे इस तरह की बीमारी है तो इसे आश्रम में छोड़ देने पर तुम लोगों को कोई एतराज है ?"

इसी बीच वह महिला होश में आ गयी और अपने साथ आयी एक महिला के सहारे उठकर धीरे–धीरे आश्रम से बाहर चली गयी। लेकिन जबतक वह बाहर नहीं चली गयी तबतक वह माँ की ओर

एकटक देखती रही । जब वह चली गयी तब उपस्थित भक्तों में से प्रमथ बाबू[1] ने पूछा–"माँ, तुमने यह कर्म किया है ?"

माँ ने कहा–"मैंने क्या किया ? मैं तो उसकी आँखों की प्रशंसा करती रही । तुमने सुना नहीं, उसके साथ आयी महिलाएँ कहती रहीं कि अक्सर उसे इस तरह की बीमारी हो जाती है ।"

माँ ने वास्तव में उसे बेहोश किया या उक्त महिला को हिस्टीरिया की बीमारी है, यह समझ में नहीं आया । लेकिन यह गौर करने की बात है कि आनेवाली महिलाओं में केवल इसी महिला का निर्वाचन क्यों किया ? क्या इसमें कोई विशेषत्व भी था ? कान की बाली में भी ऐसी कोई विशेषता नहीं थी जिसकी वजह से यह घटना हुई। इस तरह की बालियाँ देहाती औरतें प्रायः पहनती हैं । इस घटना के कुछ देर पहले माँ से मैंने यह जरूर पूछा था कि आप व्यक्ति की आकृति देखकर उसके स्वभाव को जान लेती हैं या नहीं ? पता नहीं इस घटना के माध्यम से माँ ने अपनी शक्ति का परिचय दिया हो । यद्यपि योग–विभूति आदि जिसे हम आमतौर पर समझते हैं, मैंने उन बातों को माँ में कभी नहीं देखा, यद्यपि एक बात पर हमेशा गौर करता आ रहा हूँ कि अगर मेरे मन में कोई चिन्ता उत्पन्न होती है तो माँ उसे तुरन्त समझ लेती हैं । शायद अन्य भक्तों को भी मेरी तरह यह अभिज्ञता हुई हो ।

आश्रम में भक्तों का दल 'माँ–माँ' नाम कीर्तन करते हैं । मैंने जबसे आश्रम में आना–जाना प्रारम्भ किया है तब से प्रत्येक शनिवार को सूर्योदय से लेकर सूर्यास्त तक अविश्रान्त रूप से 'माँ–माँ' कहते हुए एक न एक भक्त नाम करता रहता है । आज भी उसी प्रकार से बराबर नाम होता है । लेकिन अब समय में परिवर्तन हो गया है।

१. श्रीयुक्त प्रमथनाथ बसु । आप ढाका के वकील एवं माँ के पुराने भक्त हैं ।

अब सूर्यास्त से सूर्योदय काल तक होता है । 'माँ' किसी देवी का नाम है या इसके पूर्व 'माँ' नाम से मैंने कहीं कोई कीर्तन नहीं सुना था । फलतः जब भक्तगण अविकल गति 'माँ–माँ' चिल्लाते तब मुझे हँसी आती थी, क्योंकि मुझे ऐसा लगता जैसे वे सब बिल्ली की 'म्याऊं–म्याऊं' कह रहे हैं । लेकिन अपने मन की बात मैंने कभी किसी के सामने प्रकट नहीं की । सच तो यह है कि यह प्रकट करने की बात भी नहीं है । एक प्रकार से यह रुचि का परिचय होता ।

एक दिन प्रातःकाल मैं आश्रम में गया तो देखा – एक भक्त 'माँ–माँ' कीर्तन कर रहा है । माँ के निकट कोई नहीं है । माँ के पास बैठकर मैं कीर्तन सुनने लगा । अचानक माँ कह उठीं–"देखो, तुम्हारे नाम के साथ इनका (अर्थात् आश्रमवासी भक्त) नाम नहीं मिलता, इसलिए अश्रद्धा मत करना । सभी भगवान् के नाम हैं । किसी भी नाम से पुकारने पर उन्हें पुकारा जाता है ।" मैंने गौर किया कि माँ ने मेरी गलती को समझाया । इससे मैं लज्जित हो उठा । आगे माँ ने कुछ नहीं कहा ।

एक बार मेरी पत्नी ने माँ को तसर की साड़ी देकर प्रणाम किया । उसकी इच्छा थी कि माँ कम से कम एक दिन पहन लें । लेकिन माँ ने उसे स्पर्श तक नहीं किया । खुकुनी दीदी ने उस साड़ी को उठाकर रख दिया । उसके बदले माँ द्वारा व्यवहृत एक नयी धोती दी । हमारे द्वारा दी गयी साड़ी को माँ ने स्पर्श तक नहीं किया, यह देखकर हमें कम दुःख नहीं हुआ, पर हम कर क्या सकते थे । इस घटना के २–३ माह बाद माँ का जन्मोत्सव प्रारम्भ हुआ । उस समय सभी लोग माँ को साड़ी देने लगे । इन्हीं दिनों ढाका के वकील स्व. विभूति चरण गुह ठाकुरता की पत्नी ने माँ को एक लाल रंग

की साड़ी दी । लेकिन अन्य लोगों की तरह भेंट देकर संतुष्ट नहीं हुई । माँ को पहनायी भी । माँ स्वयं ही देखने में देवी की तरह हैं तिसपर रक्ताम्बरा होने के कारण साक्षात् भगवती तरह दिखाई देने लगीं । माँ जिस वक्त लाल साड़ी पहने बैठी थीं, वहाँ से कुछ दूरी पर मेरी पत्नी भी बैठी थीं । रक्तवसना माँ को देखकर वह मन–ही–मन कह रही थी कि जिसने माँ को यह साड़ी दी है, वह धन्य है । माँ ने मेरी साड़ी को छुआ तक नहीं । ज्योंही यह चिन्ता उसके मन में उत्पन्न हुई त्योंही माँ ने उसकी ओर देखते हुए कहा–"तुम्हारी दी साड़ी मैं पहन चुकी हूँ । उसके बाद जिसके भाग्य में थी, उसे दे चुकी हूँ ।" यह बात सुनकर मेरी पत्नी शर्म से गड़ गयी ।

सन् १९३२ को माँ के जन्मोत्सव के समय खूब धूमधाम के साथ अन्नपूर्णा पूजा हुई । एक सौ आठ प्रकार के व्यञ्जनों का भोग लगाया गया । इस भोग के उपलक्ष्य में दो–चार भक्तों को कुछ भोग सामग्री देने का आदेश हुआ था । यह आदेश माँ की इच्छानुसार बाबा भोलानाथ के मार्फत हुआ था । जिन लोगों को यह आदेश दिया गया था, उनसे छिपाने को कहा गया था । बात छिपी नहीं रहती । अन्नपूर्णा पूजा के बाद ही मैंने दो–चार लोगों की जबानी सुन लिया। अन्य लोगों की बात तो मैं नहीं जानता, पर जिन दो व्यक्तियों को यह आदेश दिया गया था, वे दोनों सरल प्रकृति, सच्चरित्र और धर्मप्राण थे । मन–ही–मन समझ गया कि माँ ने उपयुक्त व्यक्तिओं को आदेश दिया था । इसके साथ ही मैं अपने को धिक्कारने लगा । मुझे लगा जैसे मैं अशुद्ध चरित्र और भक्तिहीन हूँ । शायद इसीलिए माँ ने मुझे आदेश नहीं दिया । लेकिन अपने मन की यह बात मैंने प्रकट नहीं की । उत्सव समाप्ति के बाद मैंने कलकत्ता जाने का निश्चय किया और माँ को प्रणाम करने के लिए आश्रम गया ।

माँ ने मेरी पत्नी से कहा–'पिताजी से कहना कि कलकत्ता से अच्छे किस्म का चन्दन लाकर मंदिर में पूजा के लिए दे ।'

अपनी पत्नी की जबानी यह बात सुनकर मुझे समझते देर नहीं लगी कि इस आदेश का क्या अर्थ है । देवी–पूजा के समय मैं कुछ नहीं दे सका था । इसका कष्ट मुझे था, यह आदेश देकर माँ ने मेरे मन की मुराद पूरी कर दी । मैं मन–ही–मन माँ को शत बार प्रणाम करते हुए गाड़ी पर बैठ गया । दो महीने बाद जब मैं वापस आया तो देखा कि आश्रम में चन्दन का अभाव नहीं हुआ था ।

एक दिन सबेरे सिद्धेश्वरी आश्रम की ओर रवाना हुआ । इच्छा थी कि माँ का दर्शन करूँगा और उनके निकट बैठकर कुछ देर भगवान का नाम करूँगा । रास्ते में गणेश बाबू से मुलाकात हुई । वे भी सिद्धेश्वरी आश्रम जा रहे थे । उन्हें देखते ही मैंने सोचा कि जिस उद्देश्य को लेकर माँ के पास जा रहा हूँ, वह शायद सफल नहीं होगा, क्योंकि मैं जब अकेला रहता हूँ तब माँ कोई बात नहीं कहतीं ! बिना प्रश्न किये माँ कोई जवाब नहीं देतीं । लेकिन गणेश बाबू[1] चुप रहनेवाले आदमी नहीं हैं । वे प्रश्न के बाद प्रश्न कर माँ को परेशान कर डालते हैं । बहरहाल, हम लोग सिद्धेश्वरी आश्रम में आ गये । माँ को प्रणाम करने के बाद ज्योंही हम लोग बैठे त्योंही माँ बोल उठीं–'पिताजी, तुम लोग बैठो, मैं जरा सो लूँ ।'

इतना कहकर माँ सो गयीं । खुकुनी दीदी सिरहाने बैठकर पंखा डुलाने लगीं । कमरे में हम चार थे, पर सभी चुपचाप । शशांक बाबू ध्यान मग्न । माँ निद्रा लाने का प्रयत्न कर रही थीं, खुकुनी दीदी पंखा डुलाती हुई झूमने लगीं । कमरे की नीरवता को भंग करने का साहस हम दोनों में से किसी को नहीं हुआ । मन–ही–मन नाम जपने लगा ।

---

१. श्रीयुक्त गणेशचन्द्र सेन, बी. ए. बी. टी. । आप ढाका स्थित नवकुमार स्कूल में अध्यापक हैं ।

इस प्रकार दो घण्टे बीत गये । समय अधिक हो गया । मैं घर जाने के लिए व्याकुल हो उठा । इधर माँ हमें बैठने को कहकर स्वयं सो गयी हैं । उन्हें बिना बताये कैसे चल दूँ । इसी तरह ऊहापोह कर ही रहा था कि माँ तुरंत उठकर बैठ गयीं और बोलीं–'पिताजी, समय काफी हो गया है, घर नहीं जाओगे ?'

हम लोग फिर बिना कोई प्रश्न किये, माँ को प्रणाम करने के बाद चल पड़े । मार्ग में मन–ही–मन कह उठा–'मेरी माँ अन्तर्यामिनी है । मुँह से कुछ कहना नहीं पड़ता । मन–ही–मन प्रार्थना करने पर वे सब कुछ समझ लेती हैं ।' इस तरह की अनेक घटनाओं को मैंने अनुभव किया है जिससे यह ज्ञान हो जाता है कि वे गुह्यातिगुह्य चिन्ता को स्पष्ट रूप से समझ लेती हैं ।

यह पहले बता चुका हूँ कि कालेज का कार्य समाप्त करने के बाद मैं सवेरे अकेला माँ के पास जाता था । बाद में तीसरे पहर सपरिवार जाता था । माँ से बातचीत सबेरे ही हो पाती थी । यह ठीक है कि नित्य बातचीत नहीं होती थी । पहले मैं माँ से तरह–तरह के सवालों को पूछता जिनका कोई आधार नहीं होता था । बाद में सवाल पूछने की इच्छा समाप्त हो गयी । कभी–कभी कुछ देर तक बेठे रहने के बाद चला आता था ।

एक दिन सवेरे जाकर देखा कि माँ अपनी कुटिया के उत्तर की ओर बरामदे में अकेली बैठी हैं । प्रणाम करने के बाद मैं खड़ा हो गया । माँ बिना कुछ बोले चुपचाप बैठी रहीं । इस प्रकार एक घण्टा समय गुजर गया । बाद में माँ ने स्वतः प्रश्न किया–"पिताजी, आम के पेड़ से मधु गिर रहा है, देख रहे हो ।"

मैंने कहा–"हाँ माँ, देख रहा हूँ । लेकिन वह क्यों गिरता है?"

माँ ने साधारण भाव से उत्तर दिया–"आम के वृक्ष में मुकुल होता है । इन्हीं मुकुलों में मधु रहता है । शायद उसी से झरता है।" मैंने स्व. विजय कृष्ण गोस्वामी महाशय के गेण्डारिया आश्रम के एक आम वृक्ष के बारे में बताया कि उसमें से मधु गिरता था । गोस्वामीजी ने कहा था कि अगर किसी वृक्ष के नीचे कोई साधु दीर्घकाल तक साधन–भजन करता रहे तो उनके प्रभाव से वृक्ष भी सात्त्विक प्रभाव सम्पन्न हो जाता है । सात्त्विक प्रभाव सम्पन्न वृक्षों से ही मधु वर्षण होता है ।

माँ ने कहा–"यह असम्भव नहीं है । वृक्षों के भी प्राण होते हैं । मनुष्य का चरित्र अगर सत्संग के कारण उन्नत होता है तो वृक्षों का क्यों नहीं होगा ?" इसके बाद माँ ने अपनी कुटिया के उत्तर एक वृक्ष की ओर इशारा करते हुए बताया कि उस वृक्ष से एक बार टप–टप कर मधु गिरता रहा । पेड़ के नीचे थाली रखकर हमने संग्रह किया था ।"

मैंने माँ से पूछा–"माँ, गोस्वामी महाशय ने कहा है कि आधी रात ही साधन–भजन का वास्तविक समय है, क्योंकि इसी समय महापुरुष गण गमनागमन करते हैं । अगर इस वक्त कोई भक्त जप–तप करता है तो उसकी सहायता करते हैं ।"

माँ ने इसे अस्वीकार नहीं किया, पर इनके बदले जो कुछ कहा उसका भाव यों है–"प्रत्येक समय का एक विशेष भाव है और ये भाव पात्र भेद के अनुसार कार्य करते हैं । जैसे सवेरे एक भाव तो शाम को एक दूसरा भाव । शाम के वक्त आमतौर पर मन शून्य रहता है और काफी स्थिर हो जाता है । फलतः इस समय नाम जप करने का विधान है । इसी प्रकार मध्य रात्रि का एक विशेष भाव है जो साधन–भजन के लिए अनुकूल होता है । इसके अलावा इन भावों के आविर्भावों को अनुभव किया जा सकता है । विशेष गन्ध

या नाम में विशेष आनन्द की उपलब्धि से महापुरुषों का सान्निध्य या उनकी साधु प्रेरणा प्राप्त की जा सकती है । अक्सर ऐसा होता है कि साधक जब अपने बच्चों को लेकर सोता रहता है तब महापुरुषों के आविर्भाव से बच्चे अचानक चौंक उठते हैं । पर साधकों के लिए डरने की कोई बात नहीं है, कारण साधक के मन की स्थिति अगर भयभीत होने लायक रहती है तो महापुरुष दर्शन नहीं देते । जगत का विधान इतना सुन्दर है कि भगवान का कृपाभांड सर्वदा उन्मुक्त रहता है । पात्रानुसार वह कृपा संचारित होती है । जिसका जितना अधिकार है, उतना ही वह ग्रहण करता है ।''

माँ से मैंने पुनः प्रश्न किया–'माँ, मेरे गुरुदेव समय–समय पर उपदेश दिया करते थे कि माला फेरना भी एक तरह का बन्धन है। साधन राज्य में किसी प्रकार के बन्धन में नहीं फँसना चाहिए । माला फेरना भी बन्धन है, इसका क्या अर्थ है, समझ नहीं सका ।''

माँ ने कहा–''यह उपदेश सभी के लिये नहीं है । अधिकार भेद के अनुसार भिन्न होता है । अगर माला जप प्रारम्भ किया गया तो माले को भी उपवास नहीं कराना चाहिए । अर्थात् नित्य माला–जप करना चाहिए । इस अर्थ के अनुसार माला भी एक प्रकार बन्धन है।''

आगे माँ ने कहा– ''आज जिस स्थान पर खड़े होकर तुमने माला के बारे में प्रश्न किया, कल तीसरे पहर ठीक इसी जगह पर खड़े होकर एक और व्यक्ति ने माला के सम्बन्ध में प्रश्न किया था। इससे लगता है कि इस स्थान का कोई महत्त्व है ।'' इतना कहने के बाद मां हँसने लगीं । इसके बाद माला के बारे में एक कहानी सुनाने लगीं ।

माँ ने कहा–''एक बार मैं नवद्वीप गयी थी । वहाँ यतीश बाबू तुलसी की एक माला शोधन करने के लिए बार–बार अनुरोध करने लगे । मैंने उनसे कहा कि मैं यह सब कुछ नहीं जानती । इस पर उसने

कहा कि ठीक है । अगर आप शोधन नहीं करना चाहती तो एक बार स्पर्श कर दें । मैंने माला हाथ में ले ली । माला हाथ में लेते ही मुझे लगा कि यह माला तुलसी की नहीं है । लेकिन मैंने अपने मन के भावों को प्रकट नहीं किया । इसके बाद हम लोग पुरी चले गये । वहाँ भोलानाथ बाजार से चन्दन की एक माला खरीद लाये और कहा कि मैं इसका स्पर्श कर लूँ । ज्योंही उस माले को हाथ में ली तभी पूर्व सन्देह मन में उत्पन्न हुआ जब कि माला से चन्दन की सुगन्ध निकल रही थी । अपने सन्देह को दूर करने के लिये माला के तागे को तोड़कर उसके प्रत्येक दाने को देखा तो ज्ञात हुआ कि वह लकड़ी की माला है । ऊपर से चन्दन पोत दिया गया है । इसके बाद काशी से विंध्याचल गयी । यहाँ ढाका स्थित दोलईगंज आश्रम के त्रिपुरलिंग बाबाजी के एक शिष्य ने शुद्ध तुलसी की एक माला देते हुए बताया कि उसने स्वयं एक सूखे हुए तुलसी की माला बनाई, पर उसे आवश्यकता नहीं थी, इसलिये उसने मुझे दे दी । तब मैंने वह माला यतीश को दी । वह अपनी माला के बारे जान गया था कि वह असली तुलसी की माला नहीं है । अपने सहज विश्वास के आधार पर वह उस माला को तुलसी की माला समझते हुए जप करता रहेगा, शायद इसीलिए भगवान ने उसे असली तुलसी की माला दिलायी ।''

मैंने कहा–''अब ज्ञात हुआ कि आपसे स्पर्श करा लेने से असली वस्तु प्राप्त हो जाती है ।''

मां ने हँसते हुए जवाब दिया–''यह सब सरल विश्वास का पुरस्कार है । दीक्षा के बारे में भी यही बात होती है । जब किसी नयी सामग्री के लिये जिद्द करते हैं तब माँ अन्य कोई चीज उसे देकर झूठी बातों से सांत्वना देती है । बच्चा जो चाहता था, उसे पा लिया सोचकर प्रसन्न होता है । लेकिन माँ इससे प्रसन्न नहीं होती । बाद में जब असली चीज मिल जाती है तब उसे देकर वे निश्चिन्त होती

हैं । इसी प्रकार लोग जब सरल विश्वास के साथ कोई भी मंत्र जप करते है तब भगवान् स्वयं ही उसे सही मंत्र देने का प्रबन्ध कर देते हैं । यही है सरल विश्वास का पुरस्कार ।''

एक दिन माँ से मैंने कहा–माँ, हम लोग ठहरे गृहस्थ । अगर हम लोग भगवान्–भगवान् करते हुए सांसारिक कार्यों को छोड़ दें तब हमारी गृहस्थी कैसे चलेगी ? कौन नौकरी करेगा ? कौन बच्चों का पालन–पोषण करेगा ?

माँ ने कहा–सब वे करते हैं । देखो, जिन दिनों मैं बाजितपुर थी तभी से मेरी स्थिति ऐसी हो गयी कि मैं स्वयं अपने हाथ से कोई काम नहीं कर पाती थी जब कि घर में अन्य कोई व्यक्ति नहीं था। बारह वर्ष की एक नौकरानी थी जो घर का सारा कार्य करती थी। मेरे यहाँ के अलावा अन्यत्र भी वह काम करती थी ! मेरे यहाँ आकर काम करती है, कहीं यह बात लोग जान जाँय; इस डर से वह भोर में आकर काम कर देती थी । दिन को अन्य लोगों के यहाँ करती थी। उसे अधिक कार्य करने के लिए नहीं कहा जाता था । अपने मन से जितना करना होता, उतना कर देती थी । बरतन इस तरह माँजती थी कि चमचम चमकता रहता । एक दिन उसने बरतनों को मांज कर रखा तब मुझे ऐसा लगा जैसे ठीक से साफ नहीं हुए हैं । मुझे ख्याल हुआ कि इन बरतनों को पुनः साफ करूँ । मैं उन बरतनों को माँजने लगी । अन्य मनस्क भाव से मांजते–मांजते सभी बरतन खूब साफ हो गये । यह देखकर उसने सोचा कि वह जिस ढंग से साफ करती है, शायद इन्हें पसन्द नहीं है । इसके बाद से वह खूब अच्छी तरह से मांजने लगी । बाद में उसका विवाह हो गया और वह ससुराल चली गयी। भगवान की लीला देखो, उधर वह गयी और इधर कई दिनों बाद हम लोग ढाका चले आये । कहने का मतलब भगवान का नाम लेते रहने पर वे कोई–न–कोई सूरत निकालकर काम चला देते हैं ।''

मैंने कहा–"मां, तुम्हारी बात अलग है । हम लोगों के बारे में ऐसा नहीं भी हो सकता ।"

माँ ने कहा–"भगवान के नाम में मग्न रहने की अवस्था आने पर गृहस्थी की बातें याद नहीं आतीं । तुम लोगों को यह मालूम ही है कि जिन दिनों चैतन्य ने गृह त्याग किया था, उन दिनों उनकी माँ और पत्नी जीवित थी । क्या चैतन्य ने इस बारे में सोचा था ? तुम नाम करते जाओ, देखोगे कि तुम्हारा सारा कार्य अपने आप होता जा रहा है । भगवान की परीक्षा लेने के लिए कुछ छोड़ मत देना, वर्ना कुछ नहीं होगा । उन्हें सब दे देना । वे तुम्हारी जिम्मेदारी स्वयं उठायेंगे।"

माँ की साधना के बारे में कभी कोई प्रश्न नहीं किया था । स्वयं उन्होंने अपने बारे में जो कुछ कहा था, उससे ऐसा लगा जैसे उनकी सारी स्थिति अपने आप होती गयी है । जैसे कोई अदृश्य महाशक्ति अपने हाथ से इनका निर्माण करती आयी है । कभी मां मौन रहती थी, पर स्वेच्छा से नहीं । मां कहती–'मेरा वाक्‌रोध हो गया था, इसलिए बातचीत नहीं कर पाती थी । लेकिन जिसे जैसा इङ्गित करती, वह उसे समझ लेता था । यहाँ तक कि अगले दिन क्या–क्या करना है, यह भी इशारे से बता देती थी ।

नाम के सम्बन्ध में माँ बराबर जोर देती रहती है । उस नाम के बारे में भी माँ ने बताया था–"नाम मुझसे अपने आप हो जाया करता था । उसे करने के लिए मुझे कोई प्रयत्न नहीं करना पड़ता था । भीतर ही सर्वदा नाम चला रहता था । अगर कभी किसी से काम की बातचीत करनी पड़ती तो ज्यों ही बात समाप्त हो जाती त्यों ही तुरत नाम चलता रहता था ।"

मां ने अपने आपको सम्पूर्ण रूप से भगवान की इच्छा पर रख छोड़ा है । कर्तृत्वबोध तो उनमें नहीं है । अपने आपको भगवान के हाथ का यन्त्र मात्र समझती हैं । अक्सर वे कहा करती हैं–'भगवान इस शरीर

को लेकर न जाने कितना खेल खेल चुके हैं ।' कभी किसी प्रश्न का उत्तर देती हुई कहती–'''उत्तर मैं नहीं देती हूँ । मेरे मुँह से सिर्फ निकल जाता है । यह प्रश्न भी तुम्हारा है और उत्तर भी तुम्हारा है ।'

माँ से एक दिन मैंने कहा–था–''माँ, शास्त्रों में लिखा है कि वासना से ही लोगों का जन्म होता है । तुम अक्सर कहा करती हो कि बचपन से ही तुममें कोई कामना–वासना नहीं है । ऐसी हालत में तुमने जन्म ग्रहण क्यों किया और इतने मंदिर–आश्रम का निर्माण क्यों कराया ?''

माँ हँसकर बोली–''इतने दिनों के बाद आज तुमने प्रश्न की तरह प्रश्न किया है ।'' लेकिन मां ने मेरे प्रश्न का उत्तर नहीं दिया।

एक दिन बातचीत के सिलसिले में माँ ने कहा–''तुम लोगों की जिस तरह दीक्षा होती है, उस तरह मेरी दीक्षा नहीं हुई थी । मुझे केवल आभास मात्र मिला था ।'' कैसा आभास और किस तरह मिला था, इस बारे में कोई प्रश्न मैंने नहीं पूछा था । इस गुह्यातिगुह्य विषय पर कौतूहल प्रकट करना, देवालय में अनधिकार प्रवेश करने की तरह अशोभन सा अनुभव हुआ था ।

माँ जन साधारण को जो उपदेश देती हैं, उसका मुख्य तत्त्व यों हैं–''नाम किये जाओ । देखोगे कि सभी बातें अपने आप स्पष्ट होती जा रही हैं । मेरे साथ ऐसी बात हुई है, इसलिए दृढ़ता पूर्वक कह रही हूँ । आसन, मुद्रा, प्राणायाम सब कुछ नाम से होता है । क्या तुम लोगों ने इस पर गौर नहीं किया है कि जब किसी गम्भीर विषय पर चिन्तन करने लगते हो तब तुम लोगों की अजानकारी में सांस रुक जाती है । बाद में जब गहरी सांस लेते हो तब ज्ञात होता है कि सांस रुक गयी थी । चिन्तन के साथ श्वास–प्रश्वास का गहरा सम्बन्ध है । नाम करते–करते एक ऐसा अवसर आता है जब प्राणायाम अपने आप हो जाता है । उसके लिए अलग से प्रयत्न नहीं करना पड़ता।''

किसी विशेष नाम पर मां जोर नहीं देती । उनका कहना है– "जिसे जो नाम अच्छा लगे, उसी का जप करने पर अभीष्ट सिद्ध हो जाता है ।" इस "अच्छा लगे" शब्द के प्रति मां के कुछ इशारे है कोई स्पष्ट उक्ति नहीं है । अक्सर मां कहा करती हैं–पूर्व सम्बन्ध न रहने पर एक दूसरे के पास नहीं जाता । जिसके साथ जिसका जितना सम्बन्ध है, उसका साथ करने के लिए उसे लोग खोजते रहते हैं । यही वजह है कि जब कोई आश्रम में आता है तब उसे बैठने या चले जाने के लिए नहीं कहती, क्योंकि मैं जानती हूँ कि पूर्व जन्म में इस आश्रम के साथ जिनका सम्बन्ध था, सिर्फ वे ही लोग यहाँ आयेंगे । जिनका सम्बन्ध गहरा होगा, वे अधिक आयेंगे । कोई एक बार आने के बाद फिर नहीं आयेगा या कुछ दिन आने–जाने के बाद चला जायेगा । दूसरी ओर कोई एक बार आने के बाद फिर वापस जाना नहीं चाहेगा । इन लोगों का आना–जाना पूर्व जन्म के सम्बन्ध के कारण होता है । मैं कहूँगी तो आयेंगे और मेरे कहने पर चले जायेंगे, ऐसा नहीं होता ।"

माँ आश्रम यात्रिकों के सम्बन्ध में जो बातें बताती हैं, वे सब शायद नामों के बारे में भी प्रयोजन हैं । जिन नामों की साधना लोग कई जन्मों से करते आ रहे हैं, उन्हीं नामों के प्रति अनुराग रहना सम्भव है । शायद इसलिए मां 'अच्छा लगे, के बारे में जोर देती है। किसी विशेष नाम का उल्लेख नहीं करती । दीक्षा या गुरुतत्त्व के बारे में मां स्पष्ट रूप से कुछ नहीं कहतीं । इस बारे में प्रश्न करने पर भी स्पष्ट उत्तर नहीं पा सका । माँ सर्वदा नाम जपने का उपदेश देती है ।

वे कहती है–"कुछ भी बेकार नहीं जाता । सभी चीजों की आवश्यकता होती है । मान लो, रेल से कहीं तुम जानेवाले हो । गाड़ी पर सवार होने के लिए तुम नाव द्वारा ढाका आये । नाव से उतरकर स्टेशन तक जाने के लिए लाठी के सहारे घोड़ागाड़ी पर सवार

हुए। तुम्हारा उद्देश्य है–रेलगाड़ी पर सवार होना, पर नाव, लाठी, घोड़ागाड़ी आदि को तुम बेकार नहीं समझ सकते । ठीक इसी तरह भगवान की प्राप्ति के लिए जो कुछ तुम कर रहे हो, इसे याद रखना कि उनमें से प्रत्येक की आवश्यकता है । कुछ भी बेकार नहीं है । किसी भी नाम से भगवान को बुलाओ, कार्य सिद्ध होगा । जरूरत है सिर्फ हमेशा नाम करने की ।''

एक दिन माँ से पूछा–''माँ, नाम करते समय मन एक मुहूर्त के लिए स्थिर नहीं रहता । इस प्रकार के अस्थिर मन से नाम करने पर क्या फल प्राप्त होगा ?''

माँ ने कहा–''ठीक कह रहे हो । गुरु ही सब करते हैं । तुम उनके भरोसे रहो । देखना, सब ठीक हो जायेगा । पर तुम भरोसा कर कहाँ पा रहे हो ?''

भगवान के निकट सम्पूर्ण रूप से आत्म समर्पण करने की बात माँ अक्सर कहती रहती हैं । एक दिन उन्होंने कहा – ''साधु भाव से जीवनयापन करने पर मुक्ति मिल जाती है । चोरी या इसी तरह के पापकर्म करने वालों को भी मुक्ति मिल जाती है । दरअसल सत् या असत् नाम का कुछ भी नहीं है । डूब जाना ही असली बात है।''

माँ की बातों से यह स्पष्ट हुआ कि हम लोगों के दुःखों का मूल अहंकार है । ज्ञान समाप्त होने तथा अपने कर्तृत्वज्ञान को भूला देने पर ही मुक्ति मिल सकती है ।

मेरे एक मित्र की १०–१२ वर्ष की एक लड़की पानी में डूबकर मर गयी । जिस दिन मुझे यह समाचार मिला, मैं रात भर सो नहीं सका । दूसरे दिन शोकातुर मित्र को साथ लेकर माँ के पास गया। उस समय माँ चहलकदमी कर रही थीं । माँ के निकट जाकर मैंने अपने मित्र का परिचय दिया और दुर्घटना की कहानी सुनायी । यह भी कहा कि इसे सांत्वना देने की कृपा करें ।

माँ ने मेरे मित्र से कहा–"अपने को कर्ता समझने के कारण तुमने इस दुःख को स्वीकार किया है । अगर 'मेरा लड़का–मेरी लड़की' यह भावना नहीं रहती, अगर स्त्री–पुत्र आदि को भगवान् का धन समझते तो कष्ट पाने का कोई कारण नहीं रहता । जिसका धन है, उसे लौटा देने पर हमें दुःख नहीं होता, बल्कि एक जिम्मेदारी से मुक्त हो गया समझकर शान्ति प्राप्त करते हैं । अगर तुम वास्तव में लड़की से स्नेह रखते रहे तो रोने–गाने की जरूरत नहीं है बल्कि भगवान के निकट प्रार्थना करो ताकि उसकी सद्‌गति हो जाय । जब कभी तुम अपनी लड़की के लिए रोने–गाने का प्रयत्न करोगे तब वह तुम्हारे निकट आने का प्रयत्न करेगी । लेकिन वह आ नहीं सकेगी, क्योंकि जिस पर्दे के कारण वह तुमसे अलग हुई है, उसे फाड़ देने की ताकत उसमें नहीं है । इस प्रकार के प्रयत्न उसके लिए कष्टकारक होंगे । अगर तुम अपनी लड़की के लिए रोना–धोना जारी रखोगे तो उसका कष्ट बढ़ता जायगा । इसे स्नेह नहीं कहा जा सकता । इसलिए उसके कल्याण के लिए, शान्ति के लिए भगवान के निकट प्रार्थना करते रहो ।"

इस तरह की अनेक बातें माँ कहती रहीं । मैंने माँ से कहा– माँ लड़की तो निष्पाप रही तब क्यों उसकी अकाल मृत्यु हुई ।"

माँ ने कहा–"पिता–माता के पापों का भोग संतान को भोगना पड़ता है । इसके अलावा प्रायः जन्मपूरण के लिए भी आते हैं । उदाहरण के लिए उमा[1] की बात लो । वह भी तो फूल की तरह निष्पाप लड़की थी । वह फिर अचानक क्यों मर गयी ? इसका उत्तर यह है कि कुछ दिन उसे भोगना था, इसलिए उसे भोग गयी ।"

कभी–कभी माँ साधारण विषयों के सम्बन्ध में नैतिक और आध्यात्मिक उपदेश देती रहती हैं । ऐसे उपदेश अपनी गरिमा के माधुर्य

१. उमा श्री युक्त विनय भूषण सेन महाशय की कन्या थी । बहुत ही कम उम्र में उसका देहान्त हो गया । उसकी स्मृति में विनय बाबू ने आश्रम में नाम घर बनवाया है ।

से हृदयग्राही बन जाते हैं । एक दिन आश्रम में बैठा था । इसी समय आश्रम की दो गायों को चरने के लिए रस्सी खोलकर छोड़ दिया गया। दोनों ही उछलती हुई मैदान की और दौड़ गयीं । उन दोनों को कूदते-फाँदते देख माँ हंसती हुई बोलीं-"बन्धन से मुक्ति पाने पर जीव को ऐसा ही आनन्द मिलता है ।"

एक दिन आश्रम में माँ के पास प्रमथ बाबू[1], नगेन बाबू, भोलानाथ बाबा और मैं बैठे थे । ठीक इसी समय एक फरवीवाला आश्रम के भीतर आया । फरवी का बोझा देखने में बड़ा होने पर भी वजन में हल्का होता हैं । बोझा हल्का होने के कारण लावावाला प्रसन्न भाव से चारों ओर देख रहा था । उसे इस तरह देखते देख माँ हंसकर बोलीं- "लावावाला जिस प्रकार अपने बोझ को ढो रहा है, संसार का बोझा इसी तहर तुम लोगों को ढोना चाहिए । देखो, उसके सिर इतना बड़ा बोझा है, पर कितनी हंसी खुशी भाव से देख रहा है । तुम लोगों को भी इसी तरह आनन्द करते हुए संसार का बोझ उठाना चाहिए ।"

"इस फरवीवाले के साथ एक घटना हो गयी जिसका उल्लेख कर रहा हूँ । फरवीवाला को देखकर माँ प्रमथ बाबू से बोलीं-'पिताजी, मुझे लाई खिलाओ ।'

प्रथम बाबू ने कहा-"ठीक है, इसमें सोचना क्या ? तुम जितनी लाई खा सकती हो खा लो ।"

माँ ने कहा-"इसकी सारी फरवी खरीद लो ।"

फरवीवाला दो या अढ़ाई रुपये में सारा माल बेचने को राज़ी हुआ। प्रथम बाबू रुमाल से रुपये निकालकर देने लगे तो माँ बोलीं- "पूरी कीमत तुम्हें देने की जरूरत नहीं । आधी तुम दो और आधी नगेन दे ।"

१. श्रीयुक्त नगेन्द्रचन्द्र राय । आप एक कंट्राक्टर है ।

प्रमथ और नगेन के अलावा तीसरा व्यक्ति मैं था । माँ ने मेरा नाम नहीं लिया देखकर मैंने सन्तोष की सांस ली, क्योंकि उस समय मेरे पास एक भी पैसा नहीं था । अगर मुझे भी फरवी की कीमत देने में हिस्सा बँटाना पड़ता तो शर्म से गड़ जाता । एक कहावत है– 'जहाँ बाघ का डर रहता है, वहीं रात आ जाती है ।'

''नगेन बाबू ने माँ से कहा–''माँ, तुमने हम दोनों की कीमत देने के लिए कहा, पर अमूल्य बाबू को कुछ नहीं कहा ।''

माँ ने कहा–''ठीक है । तुम तीनों ही मिलकर कीमत चुका दो। मुझे आपत्ति नहीं है ।'' फिर मेरी ओर देखती हुई मां नगेन बाबू से बोलीं–''तुमने अमूल्य बाबू को कीमत देने को कहा । जरा उससे पूछो कि उसके पास पैसै हैं ?''

भोलानाथ बाबा अब तक चुपचाप बैठे थे । शायद उन्हें यह विश्वास था कि मैं यहाँ खाली हाथ नहीं आया हूँ । उन्होंने माँ के अनुमान को गलत साबित करके आनन्द लेने के लिए मुझसे पूछा– ''क्या आपके पास पैसे नहीं हैं ?''

मैंने कहा–''नहीं ।''

भोलानाथ ने पुनः पूछा–''रुपया है शायद ?''

मैंने कहा–''नहीं, कुछ भी नहीं है ।''

इधर मं हंसती हुई लोटपाट होती जा रही हैं । जब मैंने यह कहा कि मेरे पास कुछ भी नहीं हैं तब सभी हंस पड़े । भोलानाथ बाबा अप्रतिभ हो नीरव रह गये ।

एक दिन सुबह आश्रम जाने पर देखा कि एक सज्जन अपनी पत्नी, विधवा पुत्री के साथ माँ के पास बैठे हैं । माँ पुत्री की ओर देखती रहीं । लड़की की उम्र १५–१६ वर्ष के लगभग है । इस बाल विधवा को देखकर मुझे कष्ट हुआ । उसकी आँखो में ऐसी करुणा थी कि जिसे देखकर हृदय अपने आप रो उठा । पता नहीं, माँ उसे

क्या कह रही थीं और वह किंचित् मुस्करा रही थी । लेकिन वह हंसी इतनी म्लान थी कि आकृति पर स्पष्ट रूप से प्रकट नहीं हो पा रही थी ।

ज्यों ही मैंने जाकर माँ को प्रणाम किया त्योंही माँ ने मेरी ओर देखते हुए कहा–"इस लड़की का वेष देखकर मुझे खूब आनन्द मिल रहा हैं ।"

इस कथन का अर्थ मैं समझ नहीं सका, क्योंकि लड़की अलंकारशून्या, महीन किनारीदार साड़ी पहने, उदास चेहरा बनाये बैठी थी । इसकी शक्ल देखकर आनन्द के विपरीत भाव मन में उत्पन्न होते हैं । माँ की बातों का अर्थ समझ न पाने पर मैंने पूछा–"तुम्हारी बातों का अर्थ समझ नहीं सका ।"

माँ ने कहा–"क्यों, इसका विधवा वेश नहीं देख रहे हो ? भगवान ने इसे संसार के मोह–माया, यंत्रणा–ममता आदि से मुक्ति दिलाकर योगिनी बना दिया है । पति–पुत्र, गृहस्थी को चिंता अब नहीं करनी पड़ेगी । संसार के सभी बंधनो से मुक्त कराकर भगवान् ने इसे संपूर्ण रूप से अपना लिया है । इस योगिनी वेष को देखकर क्या आनन्द नहीं मिलता ?"

इतनी देर बाद माँ की बातों का अर्थ समझ पाने के बाद में नीरव हो गया । मां अक्सर अत्यन्त साधारण उदाहरण द्वारा आध्यात्मिक जगत् के गंभीर रहस्य को समझाने का प्रयत्न करती हैं । एक दिन मैंने माँ से प्रश्न किया–"माँ, ब्राह्मीस्थिति किसे कहते हैं ?"

माँ हंसती हुई बोली–"उससे हमारा क्या वास्ता ?"

माँ ने इस ढंग से अपनी बातें कहीं कि मैं स्वयं भी हँस पड़ा। इसके साथ ही लज्जित हो उठा । साधना के क्षेत्र में अभी तक क–ख–ग भी नहीं सीख सका और इधर एक महत्वपूर्ण सवाल कर बैठा। मैं अपने प्रश्न के कारण लज्जित हो गया हूँ, यह माँ से छिपा नहीं रहा ।

माँ ने मुझसे पूछा–"क्यों पिताजी, अगर कोई एम. ए. पास कर चुकने के बाद छोटे–छोटे बच्चों को पढ़ाने आये तो क्या उसकी विद्या ह्रास हो जायगी या और कुछ सम्भव है ?"

समझते देर नहीं लगी कि माँ ब्राह्मीस्थिति की व्याख्या कर रही हैं । एम. ए. पास करने के बाद छोटे बच्चों को पढ़ाते रहने पर जिस प्रकार उस व्यक्ति की विद्या का ह्रास या वृद्धि नहीं होती । उसका ज्ञान, उसकी वाणी और चिन्तन में रह जाता हैं, उसी प्रकार ब्रह्म में जिसकी एकबार स्थिति हो गयी है, वे गृहस्थी का कोई कार्य करे या न करे, उसका ब्रह्म ज्ञान से स्थान च्युत नहीं होता । माँ का प्रश्न सुनकर कहा–"माँ, ब्राह्मीस्थिति समझ गया ।"

माँ ने संक्षेप में बताया–"भाषा द्वारा जहाँ तक संभव हुआ, समझ सके ।"

अर्थात् ब्राह्मीस्थिति अनुभूति की वस्तु है, भाषा द्वारा उसे समझाया नहीं जा सकता । केवल आभास दिया जा सकता है । भाषा के माध्यम से आध्यात्मिक अनुभूतियाँ व्यक्त नहीं की जा सकतीं, इसे मां अनेक बार विभिन्न भावों में प्रकट कर चुकी हैं । जिसे हम लोग ब्रह्मानन्द कहते हैं, वह भी वास्तव में आनन्द नहीं हैं ।

मां कहती हैं–"आनन्द के रहने पर उसके पीछे निरानन्द भी रहेगा । ब्रह्मानुभूति आनन्द और निरानन्द के बाहर की स्थिति एक जैसी है । जिस प्रकार भींगा कलश देख पाने पर दूर से ही कलश है, समझ लेते हो, क्योंकि जलपूर्ण कलश ही भींगा दिखाई देता है। इसी प्रकार ब्रह्मज्ञ व्यक्तियों के हावभाव आनन्दमय नहीं है । वह भाव क्या है, यह भाषा के बाहर की बात है ।"

एक दिन माँ से मैंने प्रश्न किया–"मां, जातिस्मर बनने के लिए क्या भिन्न साधना करनी पड़ती है या ब्रह्म प्राप्ति के मार्ग के जातिस्मर हो जाते हैं ?"

माँ ने पूछा–"जातिस्मर किसे कहते हैं ?"

मैने कहा–"अपने पूर्व जन्मों के बारे में जो ज्ञान रहता है, उन्हें जातिस्मर कहा जाता हैं ।"

माँ ने कहा–"साधन–भजन के द्वारा ही अपने को जानना चाहिए। अपने को विशेष रूप से जानने के लिए कि मैं क्या था, क्या हो गया हूँ और आगे क्या होऊँगा, यह जानना चाहिए । साधन–भजन के माध्यम से लोग इस आत्मज्ञान को प्राप्त करते हैं । इसलिए पूर्वजन्म की स्मृति कहो या जातिस्मर बनना कहो, सब कुछ नाम करते–करते हो जाता है। इसके लिए अलग से प्रयत्न नहीं करना पड़ता । नाम करते–करते और भी अनेक आश्चर्यजनक बातों, शक्तियों से परिचय होता है और लाभ उठाया जा सकता है । यह सब साधना के मार्ग में मिलते हैं। जब ये सब शक्तियां सामने आती हैं तब उसे सिर्फ देखते रहना चाहिए। अगर उनसे खेलते रहने पर साधन गन्तव्यस्थल तक नहीं पहुँच पाता। बीच ही में आबद्ध हो जाता है । कुछ देर के लिए सोचो कि तुम इस आश्रम से स्टेशन जाओगे। मार्ग में घर, मकान, कालेज आदि न जाने क्या–क्या देखोगे । अगर उनकी ओर बिना देखे चलते रहोगे तो स्टेशन पहुँच जाओगे । अगर राह चलते तुम्हारी यह इच्छा हुई कि कालेज के भीतर जाकर देखूँ, वह कैसा बना है तब तुम कालेज के भीतर ही आबद्ध रह जाओगे । फिर कब, किस समय स्टेशन पहुँच पाओगे, इसका कोई ठिकाना नहीं ।"

उपदेश प्रदान करते या किसी गूढ़ विषय की व्याख्या करते समय माँ हम लोगों को दैनन्दिन जीवन के उदाहरण प्रस्तुत कर विषय को प्रांजल बनाने का प्रयत्न करती है, फिर ऐसी घटनाएँ हुई हैं जब माँ की बातों को ठीक से हृदयंगम नही कर सका हूँ । एक दिन माँ ने कहा था–"वही देखना तो देखना, जिसे देखा, देखने की इच्छा हमेशा के लिए समाप्त हो जाती है । वही सुनना ही सुनना जिसे सुना, सुनने की इच्छा बिलकुल गायब हो जाती हैं ।"

यह सुनकर मैंने कहा–"माँ, ऐसा क्यों होगा ? मैंने तो सुना है कि साधक को उत्साहित करने के लिए और उसके आग्रह की वृद्धि के लिए भगवान् बीच–बीच में क्षणिक दर्शन देते हैं । यह जो दर्शन है, क्या इसे प्रकृत दर्शन नहीं कह सकते ?"

माँ ने जवाब दिया–"अभी–अभी मैंने कहा कि जो दर्शन किया, फिर दर्शन करने को कुछ नहीं रहता । यहाँ तक कि दर्शन की इच्छा तक लुप्त हो जाती है, वही यथार्थ दर्शन है ।"

माँ की यह उक्ति पूर्वोक्ति की पुनरावृत्ति मात्र है । इसकी व्याख्या उन्होंने विशेष रूप से नहीं की । मैं अक्सर माँ से अपने गुरुदेव के बारे में कहा करता था । एक दिन बातचीत के सिलसिले में माँ ने कहा–"तुम शिष्य नहीं हो, शिष्य बनने की चेष्टा मात्र कर रहे हो ?"

मैंने कहा–"क्यों माँ ? मैंने तो यथारीति गुरु से मन्त्र ग्रहण किया है, ऐसी हालत में शिष्य बनने में बाकी क्या रह गया ?"

माँ ने शिष्य शब्द के बारे में ऐसी व्याख्या की जिसे मैं ठीक से समझ नहीं सका । एक दिन राम ठाकुर महाशय से बातचीत के सिलसिले में माँ की गूढ़ बातों का अर्थ समझ पाया । राम ठाकुर महाशय से गुरु–शिष्य के बारे में प्रश्न करने पर उन्होंने जो जवाब दिया, उसे पहले पहल समझ नहीं सका । बाद में मैंने पुनः अच्छी तरह से समझने के लिए पूछा–"बाबा, आपने जो कुछ बताया उसे मैं ठीक से समझ नहीं सका । मैं यह जानना चाहता हूँ कि अगर कोई व्यक्ति आपके निकट नामप्रार्थी होकर आये और आप कृपापूर्वक उसे कोई नाम दें तो ऐसी स्थिति में उस व्यक्ति के साथ आपका कौनसा रिश्ता जुड़ेगा? वह व्यक्ति आपका शिष्य बना या नहीं ?"

उन्होंने जवाब दिया–"शिष्य कहां बना । गुरु वाक्य का पालन जो व्यक्ति सर्वान्तकरण से करता है, वही शिष्य है । तुम क्या आरुणी की कहानी नहीं जानते ? गुरु ने उसे खेत से बह जानेवाले जल

को रोकने की आज्ञा दी । आरुणी ने जी जान से पानी रोकने का प्रयत्न किया, पर उसे सफलता नहीं मिली । अन्त में जहाँ से पानी प्रवाहित हो रहा था, वहीं वह सो गया । तब गुरु ने आकर उसे उठने का आदेश दिया। आरुणी की तरह अपने को जबतक लिटा नहीं दिया जाता तबतक शिष्य बना नहीं जा सकता ।''

इतने दिनों बाद बात साफ समझ में आयी कि माँ ने किस अर्थ में कहा था–तुम शिष्य नहीं हो, शिष्य बनने की चेष्टा मात्र कर रहे हो। सर्वतोभाव से गुरु के निकट आत्म समर्पण करना ही शिष्यत्व के लक्षण है । जबतक ऐसा आत्म–निवेदन न हो जाय, शरणागति की भावना न उत्पन्न हो, जबतक पुरुषाकार का अवशेष रह जाय तबतक शिष्य को यथार्थ शिष्यत्व प्राप्त नहीं होता ।

अक्सर माँ कहती हैं–''तुम लोग जितने प्रश्न करते हो, उनका उत्तर मैं नहीं देती । प्रश्न भी तुम्हारा और उत्तर भी तुम्हारा । सिर्फ मेरे मुँह से निकल भर जाता है ।'' फिलहाल ये बातें पहेली सी नहीं लगती। माँ के प्रति अविश्वास करने की हिम्मत नहीं होती। वे प्रायः कहती है–''मैं जो कुछ कहती हूँ, वह मिथ्या नहीं होता, क्योंकि मैं तो कुछ नहीं कहती । वे ही सब कुछ कहलवाते हैं ।''

माँ जिस ढंग से इन विषयों पर कहती हैं, उसमें सन्देह करने की गुंजाइश नहीं रहती । जो अपने व्यक्तित्व, अपने खण्ड चैतन्य को धो–पोंछकर अद्वैत विराट् चैतन्य के साथ ओतप्रोत भाव से युक्तावस्था में विराज रही हैं, उनकी प्रेरणा के मूल को अनुधावन करना या उनकी वाक्यावलियों की सम्पूर्ण रूप से उपलब्धि करना हमारी सीमा के बाहर की बात हैं ।

अक्सर मैंने गौर किया कि माँ सम्भवतः भक्तों के संस्कारों को गौर करती हुई, एक ही प्रश्न का उत्तर विभिन्न भक्तों को भिन्न–भिन्न ढंग से देती हैं । एक दिन की घटना है । माँ के पास मैं और

गणेश बाबू बैठे थे । ठीक इसी समय गणेश बाबू ने माँ से पूछा–"माँ, शिष्य और भक्त क्या एक ही होते हैं ?"

माँ ने कहा–"हां, एक ही होते हैं ।"

मैंने कहा–"माँ, भक्त और शिष्य में मेरी समझ से कुछ अन्तर हैं । भक्त गुरु का हाथ पकड़ना चाहता है और गुरु तो शिष्य का हाथ पकड़े रहते हैं ।"

माँ ने कहा–"हां, यही ।"

माँ ने एक ही जवाब से हम दोनों को सन्तुष्ट किया । माँ के इस साधारण उपदेश का उल्लेख यहाँ किया गया और इसका वर्णन जिस ढंग से किया गया, वह रक्त–मांस हीन कंकाल जैसा हुआ । जिन लोगों को माँ के श्रीमुख से उपदेश सुनने का अवसर मिला है, वे उसके माधुर्य को समझ सके होंगे । माँ के कहने के ढंग को भाषा द्वारा स्पष्ट करना असंभव हैं । इसके अलावा माँ के मुख–मण्डल और दृष्टि में ऐसे भावों का समावेश रहता है जिसका विश्लेषण करने के प्रयास को उपहास करता है । कभी–कभी ऐसा लगता है जैसे माँ अनासक्ता, निर्लिप्ता, सुख–दुःखातीता मर्मर मूर्ति है और कभी ऐसा लगता है जैसे हमारी माँ दुःखहारिणी, विश्वपावनी, करुणारुपिणी जगज्जननी हैं ।

बंगला सन् १९३१ । शिव चतुर्दशी के दूसरे दिन माँ सवेरे आश्रम के बाहर बैठी थी । इसी समय मैं आश्रम में जाकर उनके निकट बैठ गया । कुछ देर बाद खुकुनी दीदी, बेबी दीदी और एक महिला माँ के निकट आयी । सुना कि ये लोग कल रात भर सिद्धेश्वरी आश्रम में नाम करने के बाद इस वक्त माँ को प्रणाम करने आयी हैं । इन लोगों ने माँ को प्रणाम किया । बेबी दीदी दुलारी भाषा में हंसती हुई बोलीं–"माँ, कल हम लोग रात भर जागते हुए नाम करती रहीं । अब आगे से तुम हम लोगों को अधिक प्यार करोगी न ?"

माँ बिना कोई जवाब दिये मैदान की और स्मितानन से देखती रहीं। जब ये लोग चली गयीं तब मैंने माँ से कहा–"माँ, बेबी दीदी ने तुमसे यह कहा कि तुम उसे अधिक प्यार करोगी न, तब मुझे यह कहने की इच्छा हुई कि मां किसी को अच्छा या बुरा नहीं समझती हैं । माँ से कोई बात कहना वैसा है, जैसे किसी पाषाण मूर्ति के सामने कुछ कहना ।"

मेरी बात सुनकर माँ हँस पड़ीं । बोलीं–"हाँ, यह बात सच है कि मैं किसी को अच्छा या बुरा नहीं समझतीं । लेकिन यह भी सत्य है कि मैं जितना प्यार करती हूँ, उतना संसार में कोई नहीं कर सकता।"

सन् १३३२ को माँ के जन्मोत्सव के पूर्व आश्रम में एक नलकूप बैठाने की बात थी । इसी उपलक्ष्य में एक दिन दोपहर को तारक बाबू[1] तथा प्रफुल्ल बाबू[2] आश्रम में आये थे । नलकूप कहाँ लगाया जाय, यह प्रश्न माँ से पूछने पर माँ ने कहा–"मुझे क्या मालुम ? मैं तो तुम लोगों की लड़की हूँ । तुम लोग मुझे पानी दोगे तब पीऊँगी। तुम लोग जो कुछ दोगे, वही लूंगी । अगर तुम लोग गंदला पानी दोगे तो उसे भी मुझे साफ कर लेना पड़ता है ।"

पंकिल विषयावर्त में निमज्जमान जीवों के लिए मां की ये बातें आशा की वाणी हैं । हम लोग भी कहते हैं–"वही हो माँ, हम लोगों के कामना कलुषित हृदय तुम्हारे पावन स्पर्श से देव–सेवा के योग्य हो जाँय ।"

---

१. श्रीयुक्त डाक्टर तारकचन्द्र दत्त । आप ढाका मेडिकल स्कूल में सहायक सुपरिटेण्डेण्ट थे ।

२. श्री प्रफुल्लचन्द्र घोष । आप श्रीयुक्त योगेशचन्द्र घोष के पुत्र हैं । इनके बारे में आगे बताया गया हैं ।